प्राचीन भारत के प्रमुख संवत्: एक अवलोकन

डॉ. मुकेश कुमार मिश्र
संस्कृत विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय)

शोधसार

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण एवं प्राचीन भारतीय शासकों के कालक्रम को निर्धारित करने के लिए भिन्न-भिन्न शासकों एवं उनके अनुयायियों द्वारा भिन्न-भिन्न कालों में उत्कीर्ण अभिलेखों, सिक्कों, मुहरों, दानपत्रों, शिलालेखों, पाण्डुलिपियों, शासनपत्रों आदि पर अंकित संवत् का उल्लेख एक महत्त्वपूर्ण व अनिवार्य सामग्री है। ये संवत् न केवल शासकों की कालगणना के लिए ही आवश्यक हैं, बल्कि तत्तत् शासकों के शासनकाल में प्रचलित सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा उनके द्वारा किये गये लोककल्याणकारी कार्यों को जानने में भी सहायक सिद्ध होते हैं। प्राचीन भारतीय शासकों की लम्बी सूची के अनुरूप ही भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों के प्रान्तपतियों, शासकों आदि के द्वारा प्रचालित संवतों की भी एक दीर्घ सूची प्राप्त होती है। प्राचीन शासकों के द्वारा प्रचलित संवतों में से कई संवत् केवल इतिहास बनकर रह गये, किन्तु कुछ संवत् इतने लोकप्रिय हो गये कि स्वतंत्र भारत के इतिहास में भी अपने अस्तित्व को बनाये हुए हैं तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्ता के साथ-साथ अपनी राष्ट्रीय उपादेयता को सिद्ध कर रहे हैं और राष्ट्रीय व धार्मिक पंचांग और कलेण्डर का अभिन्न अंग बनकर कालगणना में अपनी भूमिका का निर्वहण कर रहे हैं। वस्तुतः भिन्न-भिन्न राजाओं अथवा राजवंशों के द्वारा प्रचलित संवत् जैसे नियमित कालसंकेतों के प्रयोग अकाट्य पुरातात्त्विक या अभिलेखीय साक्ष्यों व प्रमाणों के रूप में सहायक होते हैं। ये भारतीय इतिहास के अमूल्य धरोहर हैं।

शब्दकुञ्जी: *संवत्, संवत्सर, अभिलेख, राज्याभिषेक वर्ष, राज्यवर्ष, शुदि, बहुल, पंचांग, प्रतिपदा, शक, कुषाण, क्षहरात, सातवाहन, क्षत्रप आदि।*

भौगोलिक-क्षेत्रफल व आकृति की दृष्टि से प्राचीन भारतीय-भूभाग का संरचनात्मक स्वरूप वर्तमान स्वरूप की अपेक्षा अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक था। मौर्यादि कतिपय साम्राज्य का आधिपत्य अवश्य ही भारतवर्ष के अधिकांश भूभागों पर था परन्तु आद्य-ऐतिहासिक काल से ही भारत के भिन्न-भिन्न भूभागों पर भिन्न-भिन्न शासकों का आधिपत्य रहा था। इसके साथ ही आर्थिक एवं सामरिक दृष्टि से सम्पन्न शक, हूण, कुषाण, यूनानी, पार्थियन, पहलव, रोमनादि विविध विदेशी शासकों ने भी समय-समय पर भारत के भिन्न-भिन्न भागों पर शासन किये परन्तु अन्ततः भारतीयता में समाहित होकर वे भारतीय बनकर रह गये। प्राचीन भारतीय

©Indira Gandhi National Open University

स्मृतिकारों ने भी उक्त विदेशी शासकों को भारतीय जाति-व्यवस्था में स्थान प्रदान कर इनके भारतीयकरण में महती भूमिका का निर्वहण कर अपनी दूरदृष्टि का परिचय दिया। साम्राज्यवादी प्रसार नीति का अनुकरण करते हुए आर्थिक व सामरिक रूप से सम्पन्न भिन्न-भिन्न वंशों ने भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों और भागों पर अपने-अपने शासन स्थापित किये। कई शासकों ने अपने-अपने विजय के उपलक्ष्य में अथवा नवीन साम्राज्य की स्थापना करने के उपलक्ष्य में अथवा सिंहासनारूढ़ होने के उपलक्ष्य में नवीन संवत् को भी प्रचलित किया तथा उनके एवं उनके अनुयायियों के द्वारा उत्कीर्ण अभिलेखों, सिक्कों, मुहरों, दानपत्रों, शिलालेखों, पाण्डुलिपियों, शासनपत्रों आदि पर तत्तत् संवतों का प्रयोग किया गया। प्राचीन भारतीय शासकों की लम्बी सूची के अनुरूप ही भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों के प्रांतपतियों, शासकों आदि के द्वारा प्रचलित संवतों की भी एक लम्बी सूची दिखाई पड़ती है, परन्तु प्राचीन शासकों आदि के द्वारा प्रचलित किये गये संवतों में से कई संवत् केवल इतिहास बनकर रह गये किन्तु कुछ संवत् इतने लोकप्रिय हो गये कि स्वतंत्र भारत के इतिहास में भी अपने अस्तित्व को बनाये हुए हैं और धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्ता के साथ-साथ अपनी राष्ट्रीय उपादेयता को भी सिद्ध कर रहे हैं तथा राष्ट्रीय व धार्मिक पंचांग उन कलेण्डर का अभिन्न अंग बनकर काल गणना में अपनी भूमिका का निर्वहण कर रहे हैं। प्राचीन भारतीय शासकों अथवा लेखकों के कालनिर्धारण में भारत के तत्तत् भागों में भिन्न-भिन्न राजाओं अथवा राजवंशों के द्वारा प्रचलित संवत् अथवा संवत्सर जैसे नियमित काल-संकेतों के प्रयोग अकाट्य पुरातात्त्विक या अभिलेखीय साक्ष्यों व प्रमाणों के रूप में सहायक सिद्ध होते हैं।

प्रस्तुत शोधलेख के अन्तर्गत कतिपय प्रसिद्ध प्राचीन संवतों अथवा संवत्सरों का अवलोकन किया जाएगा। किन्तु विशिष्ट सम्वतों पर चर्चा करने से पहले संवत् अथवा संवत्सर शब्द के अर्थ पर विचार करना यहाँ समीचीन होगा। कोशग्रंथों में संवत् अथवा संवत्सर शब्द का प्रायः पर्याय-रूप में उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ संवत् शब्द **सम् उपसर्गपूर्वक √वय्** धातु से **क्विप् (यलोपे तुक्/यलोपः तुक् च)** प्रत्यय लगकर सम्पन्न होता है, जिसका अर्थ है - वर्ष, विशेषकर विक्रमादित्य वर्ष (जो ख्रीस्ताब्द से 56 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था)[1]। यहाँ संवत् के समानार्थक संवत्सर, वत्सर, अब्द, हायन, शरदादि शब्द भी प्राप्त होते हैं। संस्कृत-आंग्ल शब्दकोश में भी संवत् शब्द A year, especially a year of the Vikramaditya era (commencing 56 years before the Christian era), in the year (in later times especially of the विक्रम era (beginning in 58 B.C.)) आदि प्राप्त होता है[2]। इसी तरह संवत्सर शब्द भी **'संवसन्ति ऋतवोऽत्र'** अर्थात् **संवस् + सरन्** अथवा **सम् + √वस् + सरन्** इस व्युत्पत्ति के आधार पर सम्पन्न

[1] संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. 1047; वाचस्पत्यम्, भाग-6, पृ. 5176

[2] संस्कृत-अंग्रेजी कोश, पृ. 571

©Indira Gandhi National Open University

होता है, जिसका अर्थ है - वर्ष, विक्रमादित्याब्दादि[3]। शब्दकल्पद्रुम में उल्लेख है[4] - **स वसन्ति ऋतवो यत्र। सं√वस निवासे + संपूर्वात् चित्। उणा. (3/72) इति तसरन्। वत्सरः। संवसन्ति ऋतवोऽत्र संवत्सरः। वस औ निवासे इति। नाम्नीति सरः सस्य तः। संवदति भावान् इति वदो रूपं वा।** शब्दकोशों में संवत्सर के समानार्थक के रूप में संवत् वत्सर, अब्द, हायनादि शब्द प्रयुक्त होते हैं -

षडमी ऋतवः पुंसि मार्गादीनां युगैः क्रमात्।

संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः।।

आंग्लशब्दकोश में भी संवत्सर शब्द का अर्थ[5] A year. E. सम् with, completely, वत्सर - a year or सम् with वस् to abide, सरन् Unaadi aff., and त substituted for the final, a year of Vikramaditya's era, a full year, a year of the विक्रम era. The year personified (having the new and full moon for eyes and presiding over the seasons.

पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार संवत् शब्द संवत्सर शब्द का संक्षिप्त रूप है[6], जिसका अर्थ वर्ष होता है। उनकी दृष्टि में कभी-कभी इसके और भी संक्षिप्त रूप 'संव', 'सं', या 'सव' और स (प्राकृत लेखों में) प्राप्त होते हैं। कोशग्रंथ एवं वर्तमान प्रयोग की दृष्टि से 'संवत्' शब्द कहीं-कहीं केवल विक्रम संवत् का सूचक माना जाता है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। वस्तुतः संवत् शब्द वर्ष का द्योतक है जिसके पर्याय के रूप में काल, वर्ष, संवत्सर, अब्दादि का प्रयोग भी मिलता है।

कालसंकेत के प्रकारों का निर्देश करते हुए कहा जाता है कि अभिलेख लिखानेवाला राजा कालगणना के लिए अपने राज्याभिषेक वर्ष का उल्लेख करते थे जिसे राज्यवर्ष कहा जाता था। इसी तरह कई अभिलेख ऐसे भी होते थे, जहाँ नियमित संवत् का प्रयोग किया जाता था। हाँ, यहाँ एक समस्या यह थी कि उसे उस कालक्रम में किस प्रकार दर्शाया जाए, जिससे उसकी उपादेयता वर्तमानकालिक इतिहास की दृष्टि से निर्धारित किया जा सके। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राज्यवर्ष का उल्लेख करने के क्रम में ऋतु, पक्ष, दिन या तिथि, मास, नक्षत्र का संकेत भी किया जाता था। यहाँ पक्ष के लिए शुदि/सुदि/शुद्ध और बदि/वदि अर्थात् शुक्ल पक्ष एवं बहुल शब्द कृष्ण पक्ष के लिये प्रयुक्त मिलता है। वार शब्द दिवस के लिए, प्रतिपदा पहली तिथि के

---

[3] संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. 1047; वाचस्पत्यम्, भाग-6, पृ. 5176

[4] शब्दकल्पद्रुम्, भाग-5, पृ. 202

[5] संस्कृत-अंग्रेजी कोश, पृ. 571

[6] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, परिशिष्ट, पृ. 267

©Indira Gandhi National Open University

लिए, प्रथम या द्वितीय पक्ष चैत्र, वैशाख, मार्गशीर्ष आदि महिने के लिए, रोहिणी आदि नक्षत्र, वर्षादि ऋतु का प्रयोग दिखाई पड़ता है। यहाँ शुदि और बदि/वदि का आशय शुक्लपक्ष का दिन और बहुल का अर्थ कृष्णपक्ष का दिन है इस दृष्टि से शुदि और बदि तथा बहुल दो शब्दों के संक्षिप्त रूपों के संकेतमात्र है। अतः इनके पीछे तिथि शब्द लिखना अशुद्ध है क्योंकि यहाँ तिथिसूचक दिवस शब्द की विद्यमानता स्वतः होती है। प्राचीन अभिलेखों में शुदि/बदि, बहुल, ऋतु आदि का भी संक्षिप्त रूप में प्रयोग मिलता है। अभिलेखों में उल्लिखित कालसंवतों के साथ-साथ पक्षादि की चर्चा के उपरान्त वर्ण्यविषय के अनुकूल प्रमुख प्राचीन भारतीय संवतों का निरूपण समीचीन प्रतीत होता है, जो क्रमशः इस प्रकार है -

1. सप्तर्षि संवत्

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ आदि सात ऋषि सप्तर्षि नामक नक्षत्रपुञ्ज अर्थात् सात तारों के समूह में परिगणित हैं[7]। इन सप्तर्षि नामक सात तारों की कल्पित गति से सम्बद्ध संवत् सप्तर्षि संवत् के नाम से जाना जाता है। सप्तर्षि संवत् भिन्न-भिन्न अभिधानों से भी अभिहित है, यथा - लौकिक काल या लौकिक संवत्, शास्त्रसंवत्, पहाड़ी संवत्, कच्चा संवत् आदि[8]। लौकिक काल या लौकिक संवत् कहने का कारण यह है कि कश्मीर आदि में शताब्दियों के अंकों को छोड़कर ऊपर के वर्षों के अंक को लिखने का लोगों में प्रचार-प्रसार हुआ अतः इस प्रचार के कारण ही सप्तर्षि संवत् को लौकिक संवत् या लौकिक सम्वत्सर कहा जाने लगा। विद्वानों के शास्त्रसम्बन्धी ग्रंथों तथा ज्योतिषशास्त्र के पंचांगों में प्रयोग होने से इसे शास्त्रसंवत् कहा जाने लगा। कश्मीर और पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों में प्रचलित होने से इसे पहाड़ी संवत् कहा जाता है। इस संवत् को लिखते समय शताब्दियों को छोड़कर ऊपर के ही वर्ष लिखे जाते थे, अतः इसे कच्चा संवत् भी कहा जाता है।

2700 वर्षों का कल्पित-चक्र सप्तर्षि संवत् के नाम से जाना जाता है। माना जाता है कि सप्तर्षि नामक सात तारे अश्विनी से रेवतीपर्यन्त 27 नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्र पर सौ-सौ वर्षों तक वास करते हैं। 2700 वर्षों में एक चक्र पूरा होने के बाद इसके दूसरे चक्र का आरंभ होता है। इस संवत् के प्रचलन क्षेत्र में नक्षत्र का नाम नहीं लिखा जाता है, बल्कि 1 से 100 तक वर्ष लिखे जाते हैं तथा 100 वर्ष पूरा होने पर शताब्दी का अंक छोड़कर पुनः इसका आरंभ होता है। काश्मीरी पंचांग और अन्य ग्रंथों में कभी-कभी प्रसंग से भी वर्ष लिखे हुए प्राप्त होते हैं। कश्मीरवासी इस संवत् का आरंभ कलियुग के पच्चीस वर्ष पूरा होने पर छब्बीसवें वर्ष से मानते हैं जबकि पुराण एवं ज्योतिष के ग्रंथों में इसका आरंभ कलियुग से पूर्व माना गया है।

---

[7] संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. 1071

[8] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 267

©Indira Gandhi National Open University

राजतरंगिणी[9] के अनुसार लौकिक संवत् के 24वें वर्ष में शक संवत् के 1070 वर्ष बीत चुके थे। इस दृष्टि से लौकिक संवत् और शक संवत् के बीच का अंतर 1070 -24 = 1046 = 46 है। तात्पर्य यह है कि शताब्दी के अंकरहित सप्तर्षि संवत् में 46 जोड़ने से शताब्दीरहित शक, 81 जोड़ने से चैत्रादि विक्रम, 25 जोड़ने से कलियुग और 24 या 25 जोड़ने से ई.सं. (वर्तमान) आता है। चम्बा से प्राप्त लेख में शास्त्रसंवत्, विक्रमसंवत् और शक संवत् के बीच का अन्तर पूर्ववत् दिखाई पड़ता है।

सप्तर्षि संवत् का प्रारंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (एक) से होता है और इसके महिने पूर्णिमांत होते हैं। इस संवत् के वर्ष के रूप में बहुधा वर्तमान ही लिखा जाता है। मुख्य रूप से इसका प्रचार प्राचीनकाल में कश्मीर और पंजाब में था। कालान्तर में इसका प्रचार-प्रसार कश्मीर और उसके आसपास के पहाड़ी क्षेत्रों में विशेषकर ज्योतिषियों के मध्य रह गया।

2. कलियुग संवत्

कलियुग संवत् भारतयुद्ध संवत् और युधिष्ठिर संवत् के नाम से जाना जाता है[10]। इस संवत् का आरंभ 3102 ई. पूर्व में 18 फरवरी को प्रातः माना जाता है। शक संवत् 1840 और विक्रम संवत् 1975 के पंचांग में कलि संवत् 5019 प्राप्त होता है। इस दृष्टि से भी 5019-शक संवत् 1840 करने पर 3179 प्राप्त होता है, 5019-विक्रम संवत् 1975 करने पर 3044 प्राप्त होता है और ई. सन् में 3101 जोड़ने पर कलियुग संवत् प्राप्त होता है। प्रत्येक स्थिति में कलि संवत् का समय 3102 ई. पूर्व निर्धारित होता है। यह संवत् ज्योतिषीय ग्रंथों, पंचांगों के साथ-साथ कुछ शिलालेखादि पर भी प्राप्त होता है। चालुक्यवंशी शासक पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल स्थित जैन मंदिर के शिलालेख में इस बात का उल्लेख है कि इस मंदिर का निर्माण भारतयुद्ध से 3735 और शकशासकों के 556 वर्ष बीतने पर हुआ था[11]। इस दृष्टि से भारतयुद्ध संवत् और शकसंवत् के बीच 3735-556 = 3179 वर्ष का अंतर दिखाई पड़ता है। यही अंतर कलियुगसंवत् और शकसंवत् के बीच भी दिखाई पड़ता है। इस दृष्टि से भारतयुद्ध संवत् और कलियुग संवत् एक ही माना जाता है। भारतयुद्ध जीतने के बाद युधिष्ठिर ने अपने राज्य के प्राप्त होने के उपलक्ष्य में 3102 ई. पूर्व में जो संवत् चलाया था, वह युधिष्ठिर संवत् के नाम से जाना जाता है।

वराहमिहिर एवं कल्हण के कथन से स्पष्ट होता है कि भारतयुद्ध द्वापर के अंत में नहीं, बल्कि कलियुग संवत् के 653 वर्ष व्यतीत होने पर हुआ था[12]। पौराणिक ग्रंथों में कलियुग का प्रारंभ भारतयुद्ध के 51 वर्ष बाद माना जाता है। कहा जाता है कि पाण्डवों के विजयी होने के बाद 15

---

9 लौकिकाब्द चतुर्विंशे शककालस्य सांप्रतम्। सप्तत्याभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः - राजतरंगिणी, तरंग-1, श्लोक-52

10 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 270

11 *वही*, पृ. 271

12 भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 271-72

©Indira Gandhi National Open University

वर्षों तक राजा धृतराष्ट्र के अनुसार शासन-कार्य चलता रहा। पुनः भीम के वाग्बाण से खिन्न होकर धृतराष्ट्र विरक्त हो गये और शासन-कार्य युधिष्ठिर के पास चला आया। 36वें वर्ष कृष्ण और यादवों के स्वर्गवास की खबर सुनकर राजा युधिष्ठिर ने परीक्षित को राज्यसिंहासन पर आसीन करके अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ महाप्रस्थान किया। आशय यह है कि कृष्ण का स्वर्गारोहण, पाण्डवों का महाप्रस्थान एवं पुराणों में वर्णित कलियुग का प्रारंभ भारतयुद्ध के 51 वर्ष बाद माना गया है। विविध मतों के आधार पर आचार्यगण यह मानते हैं कि कलियुग संवत् और भारतयुद्ध संवत् का समय समान रहा हो किन्तु वे इस मत से भी सहमत हैं कि भारत का युद्ध कलियुग के प्रारंभ में नहीं हुआ था। अन्ततः कह सकते हैं कि कालगणना की दृष्टि से कलियुग संवत् कोई ऐतिहासिक सम्वत् नहीं था बल्कि भारतीय ज्योतिषियों ने कालगणना की सुविधा के लिए इस संवत् का प्रयोग किया था।

3. वीरनिर्वाण संवत् / महावीर संवत्

अंतिम जैन तीर्थंकर महावीर के परिनिर्वाण के उपलक्ष्य में जिस संवत् का आरंभ किया गया था, वह वीरनिर्वाण संवत् या महावीर संवत् कहलाता है। यह संवत् 527 ई. पूर्व में आरंभ हुआ माना जाता है। श्वेताम्बर मेरुतुंगसूरिकृत 'विचारश्रेणि', श्वेताम्बर अम्बदेव के शिष्य नेमिचंद्राचार्यरचित 'महावीरचरियं' नेमिचंद्राचार्य एवं दिगम्बर नेमिचन्द्ररचित 'त्रिलोकसार' नामक ग्रंथों[13] से भी स्पष्ट है कि वीरनिर्वाण संवत् से 605 वर्ष के बाद शक संवत् आरम्भ हुआ था। इस दृष्टि से 605-78 = 527 ई. पूर्व वीरनिर्वाण संवत् माना जाता है। 527 ई. पूर्व में माने जानेवाले वीरनिर्वाण संवत् और 57 ई. पूर्व के विक्रम संवत् के बीच 470 वर्ष का अन्तर माना जाता है। इस दृष्टि से विक्रम संवत् 470 वर्ष जोड़ने पर 527 एवं ई. सन् में 527 मिलाने से वीरनिर्वाण संवत् की गणना होती है।

4. बुद्धनिर्वाण संवत्

बुद्ध के निर्वाणकाल से जो संवत् आरम्भ हुआ माना जाता है वह बुद्धनिर्वाण संवत् कहलाता है। बुद्ध के निर्वाण के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाये जाते हैं। श्रीलंका, ब्रह्मा, और स्याम आदि देशों में बुद्ध का निर्वाण 544 ई. पूर्व में माना जाता है। चीन निवासी 638 ई. पूर्व में बुद्ध का परिनिर्वाण मानते हैं। 400 ई. सन् में भारत यात्रा पर आये हुए चीनी यात्री फाहियान का कहना था कि इस समय तक बुद्ध के निर्वाण के 1497 वर्ष हो चुके थे। इस दृष्टि से बुद्ध का निर्वाण 1097 ई. के आसपास दिखाई पड़ता है। वहीं दूसरे चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग का कथन कि बुद्ध के निर्वाण के 100 वर्ष बाद अशोक का साम्राज्य सुदूरवर्ती क्षेत्रों तक फैल गया था। अशोक का शासनकाल 269 ई. पूर्व से लेकर 227 ई. पूर्व तक माना जाता है। इस दृष्टि से बुद्ध का

[13] *वही*, पृ. 273

©Indira Gandhi National Open University

निर्वाणकाल चौथी ई. पूर्व शताब्दी के मध्य माना जा सकता है। इसी तरह बूलर ने 483-82 से 472-71 के मध्य, प्रो. कार्न ने 388 ई. पूर्व में, फर्गसन ने 481 ई. पूर्व में, जनरल कनिंघम ने 478 ई. पूर्व में, मैक्समूलर ने 477 ई. पूर्व में, गया लेख के आधार पर पंडित भगवानलाल इन्द्रजी ने 638 ई. पूर्व में, मिस डफ ने 477 ई. पूर्व में, डॉ. बर्नेट ने 483 ई. पूर्व में, डॉ. फ्लीट ने 482 ई. पूर्व में और वी.ए. स्मिथ ने 487 या 486 ई. पूर्व में बुद्ध का निर्वाणकाल माना है। बुद्धनिर्वाण संवत् से संबंधित अधिक लेख न मिलने तथा बुद्ध के निर्वाणकाल के विषय में मतभेद को देखते हुए पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 487 ई. पूर्व में इसका आरंभ होना स्वीकार किया है[14]।

5. मौर्य-संवत्

मौर्य साम्राज्य की स्थापना 321 ई. पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के द्वारा की गई थी। माना जाता है कि 321 ई. पूर्व में अपने साम्राज्य की स्थापना के उपलक्ष्य में चंद्रगुप्त मौर्य ने मौर्य संवत् का परिचालन किया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह संवत् लोकप्रिय नहीं हो पाया, अतः नियमित संवत् के रूप में इसका प्रयोग दिखाई नहीं पड़ता है। फिर भी उड़ीसा में कटक के समीप स्थित उदयगिरि की हाथीगुम्फा में प्राप्त जैन शासक खारवेल अर्थात् महामेघवाहन का एक लेख प्राप्त होता है जिस पर मौर्यसंवत् 165 अंकित है[15]। संभवतः यही एक ऐसा लेख है जिसपर मौर्यसंवत् अंकित मिलता है। किन्तु इस विषय में विद्वानों के मध्य पर्याप्त मतभेद हैं। वस्तुतः हाथीगुम्फा अभिलेख की सोलहवीं पंक्ति का अनुवाद करते हुए इस अभिलेख को पढ़नेवाले पण्डित भगवानलाल इन्द्रजी तथा स्टेनकोनो द्वारा उल्लिखित 'मौर्यसंवत् के 165वें वर्ष में' - ने इस विचार को जन्म दिया था कि मौर्यवंश के प्रथम शासक चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक संवत् का प्रचलन किया था, जो खारवेल के समय में प्रचलन में था। किन्तु फ्लीट, लूडर, स्मिथ, डी.सी. सरकार ने उपर्युक्त मत का विरोध करते हुए कहा है कि यहाँ किसी संवत् का उल्लेख नहीं हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्यों ने किसी संवत् की स्थापना अथवा उसका प्रचलन नहीं कराया था। हाथीगुम्फा अभिलेख के अंश से भी यद्यपि इस संवत् के उल्लेख को संदिग्ध ही कहा जाएगा। फिर भी यदि स्टेनकोनो एवं भगवानलाल इंद्रजी के कथन में विश्वास किया जाए तो 321 ई. पूर्व मौर्यसंवत् का समय निर्धारित होता है जो चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण काल रहा होगा।

6. सेल्युसिडि संवत्

323 ई. पूर्व में सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त उनके सेनापतियों में से एक सेल्युकस निकटॉर सीरिया का स्वामी बना। बैक्ट्रिया आदि एशिया के पूर्वी देश भी इसके अधीन थे। सेल्युकस ने अपने राज्य को स्थापित करने के उपलक्ष्य में 1 अक्टूबर 312 ई. पूर्व में यह संवत् चलाया था

[14] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 275

[15] *वही*, पृ. 275

©Indira Gandhi National Open University

और इसका प्रसार बैक्ट्रिया में भी हुआ। काबुल तथा पंजाब जैसे भारतीय क्षेत्रों में बैक्ट्रियाई यूनानियों का आधिपत्य हो जाने पर इन क्षेत्रों में भी इस संवत् का प्रचार-प्रसार रहा होगा। यद्यपि इस विषय में कोई साक्ष्य अब तक प्राप्त नहीं हुए हैं।

7. विक्रम संवत्

नियमित संवत् के रूप में प्रयुक्त होनेवाले संवतों में विक्रम संवत् महत्त्वपूर्ण है। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी इसका विशेष महत्त्व है। यह संवत् 57 ई. पूर्व में आरम्भ हुआ माना जाता है। विक्रम संवत् को कृत् संवत् और मालव संवत् के नाम से भी जाना जाता है। तीन भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित होते हुए भी तीनों नाम एक ही संवत् के स्वीकार किये जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि तीनों नामों में से आरम्भ में कृत् संवत् नाम का उपयोग होता था। कालान्तर में इसे मालव संवत् कहा जाने लगा और फिर यह विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ये तीनों ही नाम एक ही व्यक्ति से सम्बद्ध हैं और वह है विक्रमादित्य प्रथम। इतिहास में विक्रमादित्य उपाधिवाले कई शासक संभवतः चौदह हुए हैं। अब प्रश्न यह है कि विक्रम संवत् आरंभ करनेवाले इस विक्रमादित्य का समय क्या रहा है? सत्रहवें सातवाहन शासक हाल (20-24 ई.) द्वारा संकलित महाराष्ट्री प्राकृत एवं 700 आर्या छन्दों में निबद्ध प्रेमगाथा सत्तसई (सप्तशती) में विक्रम नामक एक प्रसिद्ध राजा की चर्चा है, जिनकी दानशीलता की यहाँ प्रशंसा की गई है। इसके साथ ही गुणाढ्य द्वारा पैशाची प्राकृत में लिखित बृहत्कथा और इसके संस्कृत अनुवाद सोमदेवकृत कथासरित्सागर में उज्जैन के शासक विक्रमसिंह (लम्बक-6, तरंग-1), पाटलीपुत्र के राजा विक्रमतुंगादि (लम्बक-7, तरंग-1) विक्रम नामक राजाओं की कई कथाएँ मिलती हैं[16]। इससे स्पष्ट है कि प्रथम शताब्दी ई. पूर्व में विक्रम नाम का कोई शासक था जिसका शासन मालवा प्रान्त में था। नीलकण्ठ शास्त्री रचित 'दक्षिण भारत का इतिहास' नामक ग्रंथ में एक उपाख्यान की चर्चा है[17], जिसके अनुसार उज्जैन के राजा गर्दभिल्ल ने जैन संत कालका का अपमान किया था। कालकाचार्य ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए शकों को उज्जैन पर हमला करने के लिए प्रेरित किया तथा शकों की सहायता से राजा गर्दभिल्ल को उखाड़ फेंका गया। किन्तु कुछ वर्षों के बाद राजा गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने प्रतिष्ठान से अपनी सेना के साथ अभियान करके उज्जैन के आक्रमणकारियों को खदेड़ दिया। अपने इस विजय के स्मृतिस्वरूप उन्होंने 57 ई. पूर्व में एक नये संवत् को आरम्भ किया जो इतिहास में विक्रमसंवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

माना जाता है कि जब विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर अपने साम्राज्य स्थापित किये, तब इससे एक नये युग का आरंभ हुआ। यह युग सुख, शान्ति और समृद्धि का माना जाता है। इस

[16] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 281

[17] दक्षिण भारत का इतिहास, पृ. 79

©Indira Gandhi National Open University

काल में सत्य को पुनर्स्थापित किया गया। इस दृष्टि से विक्रमसंवत् आरंभ में कृत् संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ क्योंकि कृतयुग या सतयुग के समान ही यहाँ सत्य का साम्राज्य स्थापित हुआ। मालवा और राजपूताने में ई. की पाँचवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक 'कृतयुग' का प्रयोग युगगणना की दृष्टि से दिखाई पड़ता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि राजा विक्रमादित्य ने मालवगणों की सहायता से ही अवन्ति प्रदेश को जीतकर वहाँ मालव साम्राज्य की स्थापना की हो अथवा इस साम्राज्य का सम्बन्ध मालवक्षेत्र से था जहाँ एक सुस्थिर साम्राज्य की स्थापना की गई थी। इस दृष्टि से यह विक्रम संवत् ही कृतसंवत् के बाद अपने भौगोलिक भूभाग से सम्बद्ध होकर मालव संवत् के रूप में प्रचलित हो गया। नरवर्मन के वर्ष 461 के मन्दसौर अभिलेख में मालव और कृत का प्रयोग साथ-साथ मिलता है। इसके बाद के अभिलेखों में केवल मालव संवत् का प्रयोग मिलता है जो नौवीं शताब्दी ई. तक के अभिलेखों में प्राप्त होता है।

कालान्तर में विक्रमादित्य के शौर्य, दानशीलता, उदारता एवं सत्यशासन की स्मृति से संयोजित करते हुए कृत और मालव के स्थान पर विक्रमसंवत् का प्रयोग किया जाने लगा। नौवीं शताब्दी के बाद के लेखों में विक्रमसंवत् का प्रयोग दिखाई पड़ता है। 1103 ई. के बाद बंगाल को छोड़कर प्रायः समस्त उत्तरी भारत में केवल विक्रम संवत् का ही प्रयोग किया जाने लगा।

विक्रम संवत् 57 ई. पूर्व में 57 वर्ष घटाने पर (57-57 = 0) ई. सन् की प्राप्ति होती है तथा विक्रम संवत् 57 ई. पूर्व को 135 वर्ष से घटाने पर (135-57 = 78) 78 ई. सन् प्राप्त होता है, जो शक संवत् का काल है। उत्तर भारत में इस संवत् का आरम्भ चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से होता है तथा पूर्णिमा को समाप्त होता है। दक्षिण भारत में कार्तिक के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होकर इसे अमावस्या को समाप्त हुआ माना जाता है। स्पष्ट है कि उत्तरी चैत्रादि विक्रम संवत् दक्षिणी कार्तिकादि विक्रम संवत् से सात महिना पहले प्रारंभ होता है। काठियावाड़, गुजरात और राजपूताना के कुछ क्षेत्रों में विक्रम संवत् का आरंभ आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा (अमांत) से भी होता है जिससे उसे आषाढ़ादि संवत् कहते हैं। राजपूताना के उदयपुर आदि राज्यों में राजकीय विक्रम संवत् अब श्रावण कृष्ण (पूर्णिमांत) से आरंभ होता है।

पं. गौरीशकर हीराचन्द्र ओझा का मानना है[18] कि वास्तव में विक्रम संवत् का प्रारंभ कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा से और शक संवत् का चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से माना जाता है। उत्तरी भारत के पंचांग शक संवत् पर आधारित होने से वहाँ वर्ष चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से प्रारंभ होता है। उस क्षेत्र में रहनेवालों ने भी बाद में विक्रम संवत् का आरंभ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से भी मानना आरंभ कर दिया हो। उत्तरी भारत के लेखों में संवत् दोनों तरह से अर्थात् कार्तिकादि और

[18] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 283-84

©Indira Gandhi National Open University

चैत्रादि मिलते हैं। ई. सन् की बारहवीं शताब्दी तक के लेखों में कार्तिकादि संवत् अधिक मिलता है परन्तु तेरहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक के लेखों में चैत्रादि का प्रयोग अधिक मिलता है। राजबली पाण्डेय भी लिखते हैं[19] कि उत्तर भारत में विक्रम संवत् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से आरंभ होता है किन्तु गुजरात और दक्षिण भारत में यह कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से आरंभ होता है। उत्तर में विक्रम संवत् पूर्णिमान्त एवं दक्षिण में अमान्त होता है। बंगाल में हिजरी संवत् का परिवर्तित रूप फसली संवत् अपनाया गया है, अतः बंगाल को छोड़कर समस्त उत्तरी भारत में विक्रम संवत् प्रचलित है। सुराष्ट्र और आन्ध्र में भी इस संवत् का प्रयोग होता है।

विक्रम संवत् भारत की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय धरोहर है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी संविधान निर्माणक्रम में विक्रम संवत् का प्रयोग किया है। इसकी झलक संविधान की उद्देशिका में भी देखी जा सकती है[20]। भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित हिन्दू पंचांग के रूप में इसकी गणना होती है। भारत के अनेक राज्यों में प्रचलित पारम्परिक पंचांग के रूप में इसे स्वीकार किया गया है। नेपाल में सरकारी/आधिकारिक संवत् के रूप में इसका उपयोग होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 27 मार्च 1957 को जब शक संवत् को राष्ट्रीय पंचांग के रूप में अपनाया गया था, उस समय विक्रम संवत् को भी सांस्कृतिक पंचांग के रूप में स्वीकार कर लिया गया होगा। यही कारण है कि आज भी कैलेण्डर पर शक संवत् के साथ-साथ विक्रम संवत् का उल्लेख भी प्राप्त होता है। हिन्दू पर्व-त्योहारों के काल को देखने के लिए हम आज भी विक्रमी संवत् का ही प्रयोग करते हैं, जो विक्रम संवत् की लोकप्रियता को प्रकट करता है।

8. शक सम्वत्

शक सम्वत् का आरंभ कब हुआ? इस संवत् के आरंभकर्ता कौन थे? किस राजवंश के शासक के साथ यह सम्वत् सम्बद्ध है? - ये ऐसे प्रश्न हैं, जिसके विषय में आज भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। फर्ग्युसन, ओल्डेनबर्ग, थामस, बनर्जी, रैप्सन, हेमचन्द्र रायचौधुरी प्रभृति आचार्यों के अनुसार शक सम्वत् का आरम्भ 78 ई. में कुषाणवंश के शासक विम कडफिसेस के उत्तराधिकारी कनिष्क के द्वारा अपने राज्यारोहण काल के उपलक्ष्य में किया गया था[21]। बाद में कनिष्क की अधीनता स्वीकार करनेवाले पश्चिमी भारत के शकक्षत्रपों ने कनिष्क-प्रचालित संवत् का प्रयोग अपने लेखों तथा सिक्कों में चतुर्थ शताब्दी के अन्त तक किया। आरंभ में कनिष्कप्रचालित संवत् का कोई नाम नहीं था किन्तु शकक्षत्रपों के साथ निरन्तर आबद्ध होने के कारण ही कालान्तर में यह संवत् शकसंवत् के नाम से विख्यात हुआ। यद्यपि कुषाण तथा शकक्षत्रपों के लेखों एवं सिक्कों

---

19 भारतीय पुरालिपि, पृ. 193

20 ...अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26-11-1949 ई. मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी संवत् दो हजार छह विक्रमी को ..... आत्मार्पित करते हैं। - भारत का संविधान, पृ. 21

21 प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ. 354

©Indira Gandhi National Open University

में केवल संख्या का ही उल्लेख मिलता है जबकि पाँचवीं शती के बाद के भारतीय अभिलेखों में शकसंवत् अथवा शककाल का अंकन प्राप्त होता है। इस प्रकार कुषाणशासक कनिष्क द्वारा प्रवर्तित, किन्तु शकक्षत्रपों के काल में बहुप्रचलित सम्वत् ही कालान्तर में शकसम्वत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया। शकसंवत् के प्रचलित इतिहास के विषय में परम्परा उक्त तथ्य को प्रायः स्वीकार करती है, किन्तु पूर्ण व अकाट्य रूप में इसे प्रामाणिक नहीं मानती है। यहाँ शकसम्वत् के प्रचलनकाल के विषय में कोई विवाद नहीं है। इतिहास एक स्वर से शकसंवत् के आरम्भ होने की तिथि 78 ई. मानती है। जैन स्रोतों से भी इस बात की पुष्टि होती है।

जैन ग्रंथ 'प्रभावकचरित' के कालकाचार्य-कथानक से भी स्पष्ट होता है कि विक्रमादित्य के सिंहासनारूढ़ होने के 135 वर्ष बाद शकों ने विक्रमादित्य के परवर्ती किसी उत्तराधिकारी को मारकर तथा उनके साम्राज्य को उज्जयिनी से उखाड़कर पुनः अपना साम्राज्य स्थापित किया[22]। इसी विजय के उपलक्ष्य में शकों ने जिस संवत् का प्रचलन किया वह शक संवत् के नाम से जाना जाता है। यहाँ यह तो स्पष्ट है कि अवन्ति के मालवक्षेत्र में 78 ई. में शकसम्वत् का आरम्भ हुआ क्योंकि गणना की दृष्टि से 135-57 ई. पूर्व = 78 ई. प्राप्त होता है। अब प्रश्न यह है कि वह कौन सा शक शासक था जिसका साम्राज्य 78 ई. में मालवक्षेत्र में रहा होगा। पश्चिमी भारत के शकक्षत्रपों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि यहाँ दो शकवंशों के अस्तित्व रहे थे, वे थे -

1. महाराष्ट्र का क्षहरात वंश और

2. कार्दमक (वंश) अथवा सुराष्ट्र और मालवा के शकक्षत्रप।

महाराष्ट्र के क्षहरात वंश का प्रथम शासक भूमक था किन्तु इस वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक नहपान रहा था जिन्होंने 119 ई. से 125 ई. तक राज्य किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि नहपान की मृत्यु के साथ ही पश्चिमी भारत में क्षहरात क्षत्रपों का अन्त हो गया हो। क्षहरात वंश के बाद पश्चिमी सुराष्ट्र एवं मालवा पर शकों की दूसरी शाखा अथवा दूसरे वंश अर्थात् कार्दमक वंश के शासकों ने सत्ता स्थापित की। इस नवीन वंश का साम्राज्य स्थापित करनेवाला पहला शासक चष्टन था जो सम्भवतः पहले कुषाणों की अधीनता में सिन्ध प्रान्त का क्षत्रप था। नहपान की मृत्यु के बाद उसे दक्षिण-पश्चिमी प्रान्त का वायसराय नियुक्त किया गया था किन्तु बाद में कुषाणों की अधीनता से मुक्त होकर उसने स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित किया एवं 'महाक्षत्रप' की उपाधि धारण की। चष्टन ने वृद्धावस्था में अपने पुत्र जयदामन को क्षत्रप नियुक्त किया था।

---

[22] भारतीय पुरालिपि, पृ. 177

©Indira Gandhi National Open University

सम्भवतः जयदामन चष्टन के अधीन किसी क्षेत्र के क्षत्रप थे, स्वतंत्र शासक नहीं। चेष्टन के जीवनकाल में ही जयदामन की मृत्यु हो गयी। फलतः चष्टन ने अपने पौत्र रुद्रदामन को क्षत्रप नियुक्त किया था। चष्टन, जयदामन एवं रुद्रदामन का क्रमशः उल्लेख शक संवत् 72 ई. अर्थात् 150 ई. में उत्कीर्ण रुद्रदामन के गिरनार अथवा जूनागढ़ अभिलेख में प्राप्त होता है[23] **तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिचष्टनस्यपौत्रस्य राज्ञः महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिजयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्तनाम्नो रुद्रदाम्नो वर्षे द्विसप्ततितमे मार्गशीर्ष बहुल प्रतिपदायाम्...।** अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि रुद्रदामन अपने वंश का महान् व लोकप्रिय शासक था तथा उसने स्वयं अपने पराक्रम से महाक्षत्रप की उपाधि प्राप्त की थी। वस्तुतः रुद्रदामन के विषय में जिस सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार 72वें वर्ष में कराने की बात कही जाती है, उस तिथि की गणना में संवत् का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है किन्तु शकक्षत्रप होने के कारण शकों की कालगणना के अनुरूप पुराविदों ने 72वें वर्ष को 72 शकसंवत् माना है। इस दृष्टि से 150 ई. में रुद्रदामन का शासन चल रहा था - ऐसा ज्ञात होता है। रुद्रदामन के **अन्धौ (कच्छ की खाड़ी) के लेख** से ज्ञात होता है कि 130 ई. में यसोमतिक के पुत्र चष्टन अपने पौत्र रुद्रदामन के साथ सहशासन कर रहे थे[24] - **राज्ञो चष्टनस ध्समोतिक पुत्रस (यसोमतिक पुत्रस) राज्ञो रुद्रदामस जयदामपुत्रस वर्षे द्विपंचासे...।** उक्त अभिलेखों में उल्लिखित तिथ्यंकन से यह स्पष्ट नहीं होता है कि 'शकसम्वत्' जिसका प्रवर्तन 78 ई. में हुआ, उसके प्रवर्तक के रूप में चष्टन अथवा रुद्रदामन या फिर क्षहरात शकों का कोई सम्बन्ध रहा हो।

गौरीशंकर ओझा ने इस बात का उल्लेख किया है कि दक्षिण के प्रतिष्ठानपुर अर्थात् पैठण के राजा शालिवाहन (सातवाहन) शासक हाल ने यह संवत् चलाया था[25]। वे कहते हैं कि कुछ लोग इसका प्रारंभ शालिवाहन के जन्म से मानते हैं। उन्होंने 1300 ई. की रचना जिनप्रभासूरिरचित 'कल्पप्रदीप' नामक ग्रंथ की चर्चा की है[26] जिसमें इस बात का उल्लेख है कि प्रतिष्ठानपुर अर्थात् पैठन में रहनेवाले एक विदेशी ब्राह्मण की विधवा बहन से सातवाहन (शालिवाहन) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने उज्जैन के राजा विक्रम को परास्त किया। बाद में उसने प्रतिष्ठानपुर का राजा बनकर तापी नदी तक का देश अपने अधीन कर लिया और वहाँ उन्होंने अपना संवत् चलाया। राजबली पाण्डेय ने उक्त बातों की चर्चा की है कि जिनप्रभसूरि के अनुसार प्रतिष्ठान के सातवाहन या शालिवाहन ने उज्जयिनी के विक्रमादित्य को हराकर अपना संवत् चलाया था। मेरुतुंगरचित 'प्रबन्धचिन्तामणि' का उल्लेख करते हुए आचार्य का कहना है कि सातवाहन शासन हाल का एक नाम शालिवाहन था। यद्यपि वे शालिवाहन को सातवाहन

---

[23] रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख, भारतीय पुरालेखों का अध्ययन से उद्धृत

[24] भारतीय प्राचीन लिपिमाला से उद्धृत, पृ. 285

[25] भारतीय प्राचीन लिपिमाला से उद्धृत, पृ. 285

[26] *वही*, पृ. 285

©Indira Gandhi National Open University

शासक गौतमीपुत्र शातकर्णि से जोड़कर देखते हैं। 'दक्षिण भारत का इतिहास' लिखते समय नीलकण्ठ शास्त्री ने सातवाहन शासक हल/हाल को सातवाहन साम्राज्य का सत्रहवाँ शासक बतलाया है[27], जिनका शासन 20-24 ई. का रहा है। उनका कहना है कि हाल के बाद के चार उत्तराधिकारियों का काल स्वल्प रहा था, संभवतः 12 वर्षों से भी कम। उनका यह भी कहना है कि सातवाहनों के मूल्य पर शकों की शक्ति का विस्तार 40-80 ई. में हुआ। वे आगे कहते हैं कि 80-104 ई. में शासन करने वाले गौतमी पुत्र शातकर्णि के अधीन सातवाहनों की सत्ता का पुनरभ्युदय हुआ। उसे शकों, पहलवों और यवनों का विनाशक कहा गया है। उसने नहपान को उखाड़ फेंका तथा शकों से मालवा और पश्चिमी राजपूताना के अलावा उत्तरी महाराष्ट्र और कोंकण, नर्मदा घाटी और सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया। ऐसी सम्भावना की जा सकती है कि शालिवाहन या सातवाहन गौतमीपुत्र शातकर्णि ने भी अपने विजय के उपलक्ष्य में एक संवत् चलाया हो। किन्तु विद्वानों का मानना है कि किसी भी सातवाहन शासकों के अभिलेखों में शक संवत् का न तो उल्लेख मिलता है, न ही इस संवत् को प्रचालित करने का संकेत ही मिलता है। हाँ, 14वीं सदी के आरंभ में प्राप्त लेखों में शक संवत् के साथ शालिवाहन (सातवाहन) का नाम अंकित मिलता है। शक संवत् 1276 अर्थात् 1354 ई. सन् में विजयनगर के यादव राजा बुक्काराय प्रथम का एक दानपत्र हरिहर गाँव से प्राप्त हुआ है जिसपर शक के साथ शालिवाहन नाम अंकित है[28]। इतिहासकारों का मानना है कि 14वीं शताब्दी के आसपास दक्षिणी विद्वानों ने उत्तर भारत में प्रचलित संवत् के साथ अंकित विक्रम नाम का अनुकरण करते हुए अपने यहाँ प्रयुक्त होनेवाले शक शब्द के साथ दक्षिण के प्रतापी राजा शालिवाहन (सातवाहन) शासक हाल अथवा गौतमीपुत्र शातकर्णी को प्रदर्शित करने के लिए शालिवाहन शब्द का प्रयोग करना आरंभ कर दिया। फलतः वहाँ नृपशालिवाहन शक, शालिवाहनशक, शालिवाहनशकवर्ष, शालिवाहनशकाब्द आदि का व्यवहार दिखाई पड़ने लगा। स्पष्ट है कि शकसंवत् के प्रचालक के रूप में सातवाहन शासकों की भूमिका भी नगण्य ही दिखाई पड़ती है।

माना जाता है कि काठियावाड़ तथा कच्छ से प्राप्त पश्चिमी क्षत्रपों के शकसंवत् 52 से 143 तक के शिलालेखों में तथा शक संवत् 100 (ई. सन् 178) से लेकर शकसंवत् 310 (ई. सन् 388) तक के सिक्कों में 'शक' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है। उक्त अवधि के शिलालेखों में केवल 'वर्षे' का उल्लेख मिलता है जबकि सिक्कों पर केवल अंक ही मिलते हैं। यहाँ सिक्कों पर 'वर्षे' का भी उल्लेख नहीं दिखता है। संस्कृत साहित्य में संवत् के साथ शक शब्द की संयुज्यता सर्वप्रथम वराहमिहिर की 'पंचसिद्धांतिका' में मिलती है जहाँ शक संवत् 427 (अर्थात् 505 ई. सन्) का

[27] दक्षिण भारत का इतिहास

[28] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 287

©Indira Gandhi National Open University

उल्लेख हुआ है[29] - **'सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चेत्रशुक्लादौ।'** शक संवत् 500 (578 ई. सन्) से लेकर शक संवत् 1262 (1340 ई. सन्) तक के शिलालेखों और दानपत्रों में -

1. शकनृपतिराज्याभिषेकसंवत्सर (शक राजा के राज्याभिषेक का संवत्)
2. शकनृपतिसंवत्सर (शकनृपति का संवत्)
3. शकनृपसंवत्सर (शकनृप का संवत्)
4. शकनृपकाल (शकनृप का काल)
5. शकसंवत् (शकसंवत्)
6. शकवर्ष (शकवर्ष)
7. शककाल (शककाल)
8. शककालसंवत्सर (शककाल वर्ष)
9. शक (शक)
10. शाक (शकनृपति से व्युत्पन्न संवत्)

आदि का प्रयोग मिलता है[30]। पुरातत्त्ववेत्ताओं का मानना है कि ई. सन् 505 (शक संवत् 427) से लेकर ई. सन् 1340 तक (1262 शक संवत्) तक के अभिलेखों, दानपत्रों आदि पर उल्लिखित शकसंवत् को प्रचलित करने का श्रेय किसी शकशासक का रहा होगा जिसने अपने राज्याभिषेक के साथ इस संवत् का प्रयोग किया होगा अथवा शकों में से किसी शक ने संवत् के साथ शक लिखने का चलन आरम्भ किया होगा।

पूर्वोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि -

1. इस संवत् को आरम्भ करनेवाला कोई विदेशी शासक ही रहा होगा।
2. इस संवत् की स्वीकृति उत्तर भारत के साथ-साथ दक्षिण भारत में भी मिली थी।

---

[29] *वही*, पृ. 286

[30] भारतीय पुरालिपि से उद्धृत, पृ. 178

©Indira Gandhi National Open University

संपूर्ण ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक स्रोतों के अध्ययन के आधार पर अधिकांश आचार्यों ने कुषाणवंश के शासक कनिष्क को ही इस संवत् को आरंभ करने का श्रेय प्रदान किया है, जिसने 78 ई. में अपने राज्यारोहण के उपलक्ष्य में अथवा अपने शासन की कालगणना के लिए इस सम्वत् को आरंभ किया होगा। परवर्ती कुषाणवंशी शासकों एवं उनके अधीन के शकक्षत्रपों द्वारा निरन्तर प्रयुक्त होने के कारण इस कालगणना ने एक सम्वत् का रूप धारण कर लिया। शकशासकों के द्वारा इस सम्वत् का इतना अधिक प्रचार-प्रसार हुआ कि इसका नाम कनिष्क संवत् या कुषाण संवत् न होकर, शकसम्वत् ही प्रसिद्ध हो गया।

उत्तरी और दक्षिणी भारत में सर्वप्रचलित यह सम्वत् उत्तरी भारत में पंचांग, जन्मपत्र और वर्षफल आदि में विक्रम सम्वत् के साथ लिखा जाता है तथा शिलालेखादि में भी कभी-कभी इसके वर्ष लिखे मिलते हैं। इस सम्वत् का आरंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है। उत्तरी भारत में इस सम्वत् का माह पूर्णिमांत अर्थात् पूर्णिमा को समाप्त होने वाला और दक्षिण भारत में अमान्त (अमावस्या) अर्थात् अमावस्या को समाप्त होने वाला माना जाता है। दक्षिण भारत के जिन क्षेत्रों में सौर मान प्रचलित है, वहाँ इसका प्रारंभ मेष संक्रान्ति से होता है। पंचांगों में इसके वर्ष को 'गत' लिखा जाता है। शिलालेखों और दानपत्रों में भी विशेषकर गत वर्ष ही लिखा मिलता है, वर्तमान वर्ष का उल्लेख कम ही दिखाई पड़ता है।

शकसम्वत् भारत का राष्ट्रीय संवत् है। स्वतंत्र भारत में 22 मार्च 1957 को जिस राष्ट्रीय पञ्चांग को अपनाया गया वह शक सम्वत् पर आधारित है। राष्ट्रीय पंचांग के अनुसार वर्ष का प्रारंभ चैत्र माह की प्रथमा तिथि को होता है। एक विदेशी शासक के द्वारा आरम्भ किये जाने के बाद भी इसे राष्ट्रीय संवत् के रूप में ग्रहण किया जाना उसकी लोकप्रियता व सर्वस्वीकार्यता की अभिव्यक्ति है एवं भारतीय संस्कृति की महानता व विशालता का परिचायक है।

9. कलचुरि संवत्

कलचुरि-संवत् को प्रवर्तित करने का श्रेय पश्चिमी भारत के आभीर वंश के संस्थापक शिवदत्त के पुत्र ईश्वरसेन को प्रदान किया जाता है। ईश्वरसेन ने 248-49 ई. के आसपास कलचुरिचेदिसंवत् का प्रवर्तन किया था[31]। ऐसा माना जाता है कि स्थानीय गणना के उद्देश्य से ही आभीर शासक ने इस संवत् का प्रचलन किया था तथा आरंभ में यहाँ केवल 'संवत्' शब्द का प्रयोग किया जाता था। कालान्तर में कलचुरियों से सम्बद्ध होने पर यह कलचुरि संवत् के नाम से प्रचलित हो गया। यह संवत् कलचुरि संवत्, चेदि संवत् और त्रैकुटक संवत् आदि विविध अभिधानों से अभिहित है।

[31] प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ. 377

©Indira Gandhi National Open University

डॉ. गौरीशंकर ओझा का मानना है[32] कि इस संवत् का प्रवर्तन किसने किया था - यह ज्ञात नहीं है। उनका कहना है कि डॉ. भगवान लाल इंद्र जी ने महाक्षत्रप ईश्वरदत्त को और डॉ. फ्लीट ने आभीर ईश्वरदत्त या उसके पिता शिवदत्त को इस संवत् का प्रवर्तक माना है। यद्यपि रमेशचन्द्र मजुमदार की दृष्टि में कुषाणवंशी शासक कनिष्क ने इसे आरंभ किया था तथा कनिष्क, वासिष्क, हुविष्क और वासुदेव के लेखों में प्राप्त होनेवाला वर्षों का संबंध कलचुरि संवत् से है। ओझा जी की दृष्टि में उक्त विचार केवल अनुमान प्रमाण पर आधारित है, निश्चित प्रमाणाधारित नहीं।

कलचुरि या चेदि संवत् का उल्लेख दक्षिणी गुजरात, कोंकण एवं मध्यप्रदेश के लेखादि में मिलता है जो गुजरातादि के चालुक्य, गुर्जर, सेंद्रक, कलचुरि और त्रैकूटकवंशियों के एवं अधिकतर लेख मध्यप्रदेश के उत्तरी हिस्से चेदि देश पर राज्य करनेवाले कलचुरि अथवा हैहयवंशी राजाओं के हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस संवत् को हैहयवंश के किसी राजा ने आरंभ किया था।

त्रिपुरी के कलचुरि नरेश नरसिंहदेव के लेखों में से दो लेखों पर कलचुरि संवत् 907 और 909 लिखा हुआ मिलता है जबकि एक अन्य लेख में विक्रम संवत् 1216 लिखा मिलता है। माना जाता है कि कलचुरि संवत् 909 विक्रम संवत् 1216 के समीप रहा हो। इस दृष्टि से विक्रम संवत् 1216 और कलचुरि संवत् 909 के बीच का अंतर 307 के लगभग आता है। शिलालेखों एवं दानपत्रों पर उल्लिखित महिने, तिथि और वार आदि की गणना का परीक्षण कर ई. सन् 249 (तिथि 26 अगस्त) अर्थात् विक्रम संवत् 306 आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से इसका आरंभ माना जाता है। चेदि संवत् में 248-249 जोड़ने से ई. सन् और 305-6 जोड़ने पर गत चैत्रादि विक्रम संवत् प्राप्त होता है। कलचुरि संवत् का प्रथम लेख 245 का मिलता है और अन्तिम लेख 958 का है। ई. सन् की दृष्टि से देखा जाए तो कलचुरि संवत् से लिखित प्रथम लेख का समय 245 के साथ 249 जोड़ने पर 494 प्राप्त होता है जो ई. सन् के रूप में दिखाई पड़ता है और अन्तिम लेख में लिखित 958 के साथ 245 जोड़ने पर 1207 मिलता है जो ई. सन् के रूप में परिगणित होता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से लगाकर माघ के प्रारंभ के आसपास अर्थात् जनवरी मास के लगने से पहले के कुछ महीनों में ही ई- सन् और वर्तमान कलचुरि संवत् का अंतर 248 रहता है शेष अधिकतर महिनों में 249 रहता है।

10. गुप्त संवत् / वलभी संवत्

गुप्त राजवंश का प्रारम्भिक इतिहास 275 ई. से आरंभ होता है। इस राजवंश की स्थापना महराज गुप्त के द्वारा की गई थी। इतिहासकारों का कहना है कि महराज गुप्त का अपर नाम

[32] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 289

©Indira Gandhi National Open University

श्रीगुप्त अथवा केवल गुप्त भी रहा हो, यद्यपि इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। गुप्तकाल के आरंभिक उपलब्ध दो मुहरों में से संस्कृत तथा प्राकृत मिश्रित एक मुद्रालेख पर 'गुप्तस्य' एवं संस्कृत में प्राप्त दूसरे मुद्रालेख पर 'श्रीगुप्तस्य' अंकित है[33]। उपर्युक्त दोनों मुहरें श्रीगुप्त के संबद्ध मानी जाती है, यद्यपि इसकी प्रामाणिकता अभी भी निश्चित नहीं हो पायी है। राजघाट एवं लुधियाना के कुछ अन्य मुहरों पर भी श्रीगुप्त अथवा श्रीगुप्तस्य अंकित मिलता है यद्यपि काल की दृष्टि से इन्हें श्रीगुप्त के साथ सम्बद्ध करना संदिग्ध माना जाता है[34]। श्रीगुप्त के बाद उनके पुत्र घटोत्कचगुप्त का नाम गुप्तवंश के उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त होता है। घटोत्कचगुप्त के कोई लेख अथवा सिक्के प्राप्त नहीं होते हैं तथापि प्रभावती गुप्त के पूना तथा रिद्धपुर ताम्रपत्रों एवं स्कन्दगुप्त के सुपिया लेख में घटोत्कचगुप्त का उल्लेख गुप्तवंश के संस्थापक एवं प्रारंभिक शासक के रूप में प्राप्त होता है[35]। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तंभलेख पर गुप्तवंश के आरंभिक शासक महराजगुप्त अथवा श्रीगुप्त एवं घटोत्कचगुप्त की उपाधि महाराज प्राप्त होती है, जिसके आधार पर इतिहासकारों का मानना है कि गुप्तवंश के इन आरंभिक शासकों की स्थिति स्वतंत्र शासक की नहीं, सामन्त की थी, जो मगध शासन के अधीन थी। घटोत्कचगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ने सर्वप्रथम स्वयं को मगध की अधीनता से मुक्त करके एक सार्वभौम स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। इनकी उपाधि महाराजाधिराज की थी। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ प्रशस्ति से भी इस बात की पुष्टि होती है। चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवी राजकुमारी कुमारदेवी के साथ विवाहकर अपने साम्राज्य को सुदृढ़ एवं स्थिर कर लिया था। उनके उपलब्ध सुवर्ण एवं रजत मुद्राओं से भी इस बात की पुष्टि होती है। चन्द्रगुप्त प्रथम का शासन 319 ई. से 350 ई. का माना जाता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं कुमारगुप्त प्रथम के शिलालेखों पर अंकित संवत् से भी इस बात की पुष्टि होती है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उपलब्ध शिलालेख गुप्त संवत् 82 से गुप्त संवत् 93 तक के हैं। इनमें बाद का अभिलेख गुप्त संवत् 93 (412 ई.) का है। दूसरी ओर चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का प्रथम अभिलेख गुप्तसंवत् 96 (315 ई.) का है। इस दृष्टि से चन्द्रगुप्त द्वितीय के साम्राज्य का अवसान गुप्त संवत् 95 (314 ई.) के आसपास माना जाता है। इन संवतों के आलोक में यदि यह मान लिया जाए कि चन्द्रगुप्त प्रथम का शासन गुप्त संवत् 1 (एक) (319 ई.) में प्रारंभ हुआ तो चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त एक चन्द्रगुप्त द्वितीय अर्थात् तीनों राजाओं का राज्यकाल का योग 95 वर्ष का रहा होगा। कुछ आचार्यों को उक्त तीन राजाओं के राज्यकाल का योग (95 वर्ष) अवश्य ही अधिक प्रतीत होते होंगे, किन्तु ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से मुगलकाल में भी तीन शासकों अर्थात् अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ के शासनकाल का योग 102 वर्ष भी देखा गया है। यहाँ निष्कर्षस्वरूप यही कहा जा सकता है कि गुप्त संवत् की स्थापना

---

[33] प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ. 390-391

[34] *वही*, पृ. 390

[35] *वही*, पृ. 391

©Indira Gandhi National Open University

गुप्तवंश के प्रथम यशस्वी एवं प्रख्यात शासक महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त प्रथम ने 319 ई. में की थी। प्रायः विद्वान् इस मत से सहमत हैं।

गुप्त संवत् का नाम ही कालान्तर में वलभी संवत् पड़ा[36]। गुप्तवंश के पतन के बाद काठियावाड़ अथवा सौराष्ट्र में जिस वलभी राज्य का उदय हुआ, वहाँ के शासकों ने गुप्तसंवत् को ही स्वीकार कर लिया, किन्तु उन्होंने गुप्तसंवत् का नाम बदलकर 'वलभी संवत्' कर दिया। वलभी संवत् के विषय में अलबेरूनी का कहना है कि शक संवत् के बाद आरंभ होनेवाले वलभी संवत् का निर्धारण शकसंवत् में छह के घन एवं पाँच का वर्ग जोड़ने पर वलभी संवत् की प्राप्ति होती है अर्थात् $78+6^3+5^2 = 78+216+25 = 319$ ई. वलभी संवत् के प्रारंभ का भी काल है। अतः दोनों ही संवतों में एकरूपता है। अलबेरूनी[37] का कहना है कि वलभीपुर के राजा वलभ के नाम से इस संवत् का नाम वलभी संवत् पड़ा। अलबेरूनी कहते हैं कि लोगों की दृष्टि में गुप्त लोग दुष्ट और पराक्रमी थे और उनके पतन होने के पश्चात् भी लोग उनके संवत् का प्रयोग करते रहे। कहा गया है कि वलभ गुप्तवंशी शासकों में अन्तिम शासक थे जिसने यह संवत् चलाया था। वलभी संवत् की भाँति गुप्तसंवत् का प्रारंभ भी शकसंवत् के 241 वर्ष बाद होता है। इस दृष्टि से $241+78 = 319$ ई. गुप्त संवत् माना जाता है और यही वलभी संवत् के आरंभ का भी वर्ष है। यहाँ यह कहना कठिन है कि वलभ नामक शासक गुप्तवंश के अन्तिम शासक थे क्योंकि उत्तर गुप्तवंशी शासकों में ऐसा कोई नाम नहीं मिलता है। साथ ही यह स्पष्ट है कि वलभी संवत् में प्रयुक्त वलभी नाम प्रान्त, नगर अथवा साम्राज्य से सम्बद्ध रहा होगा, न कि किसी राजा विशेष से।

निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि गुप्त संवत् अथवा शिलालेखों में लिपिबद्ध गुप्तकाल अथवा गुप्त वर्ष का आरम्भ 319 ई. में हुआ था। बाद में सुराष्ट्र अथवा काठियावाड़ में अपना स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित करनेवाले पूर्व में गुप्तों के अधीनस्थ रहे वलभी के मैत्रकवंश के शासकों ने कालगणना के लिए गुप्तसंवत् को ही अपना लिया। किन्तु उक्त संवत् का नाम परिवर्तित कर वलभी संवत् रख लिया। इस दृष्टि से वलभी संवत् का प्रारंभ भी 319 ई. ही माना जाता है। गुप्तसंवत् का वर्ष चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को प्रारंभ होता है तथा पूर्णिमा को समाप्त हो जाता है। इस संवत् के वर्ष बहुधा गत (बीते हुए वर्ष) लिखे हुए मिलते हैं और जहाँ वर्तमान लिखा हुआ मिलता है वहाँ इसका अभिप्राय एक वर्ष अधिक होता है। पूर्व में इस संवत् का चलन नेपाल से काठियावाड़ तक था। अन्तिम लेख जिस पर वलभी (गुप्त संवत्) उल्लिखित है, गुप्तसंवत् 945 अर्थात् 1264 ई. का प्राप्त होता है, बाद में इसका प्रचलन पूर्णतः समाप्त हो गया।

---

[36] भारतीय पुरालिपि, पृ. 200

[37] *वही*

©Indira Gandhi National Open University

11. हर्ष संवत्

हर्ष संवत् को आरंभ करने का श्रेय थानेश्वर के वर्धन वंश अथवा पुष्यभूति वंश के महान् शासक हर्षवर्द्धन को प्राप्त है। माना जाता है कि श्रीहर्षवर्द्धन ने वर्धनवंश के राज्यसिंहासन पर आसीन होने के उपलक्ष्य में 606 अथवा 607 ई. में इस संवत् को प्रारम्भ किया था। राजा हर्ष वर्धन वंश अथवा पुष्यभूति वंश के यशस्वी शासक होने के साथ-साथ उत्तरी भारत के अन्तिम महान् शासक माने जाते हैं। लगभग 650 ई. में श्रीहर्ष के काल के समापन के साथ ही भारतीय इतिहास की एक धारा का अन्त हो जाता है। हर्षसंवत् का आरम्भ करने का श्रेय यद्यपि हर्षवर्धन को प्राप्त है किन्तु किसी भी लेख में अब तक संवत् के साथ हर्ष नाम युक्त दिखाई नहीं पड़ता है। यहाँ तक कि बंसखेड़ा एवं मधुबन से प्राप्त श्रीहर्ष के दानपत्रों में भी केवल संवत् शब्द ही दिखाई पड़ता है, हर्षसंवत् नहीं[38]। अलबेरुनी ने काश्मीरी पंचांग के आधार पर इस बात की चर्चा की है[39] कि विक्रमादित्य के 664 वर्ष बाद हर्ष का समय आता है। दूसरे शब्दों में विक्रम संवत् 664 से हर्षसम्वत् का आरम्भ होता है। इस दृष्टि से 664-57 = 607 हर्ष संवत् माना जाता है। हर्षसंवत् का प्रचलन उत्तरी भारत तथा नेपाल में 300 वर्षों तक रहा[40]।

इस प्रकार यहाँ प्राचीन भारत के कुछ प्रमुख संवतों का एक संक्षिप्त अवलोकन प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन भारतीय इतिहास के कालक्रमों को जानने के लिए उक्त संवतों का अध्ययन एवं ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन भारतीय इतिहास का निर्माण इन संवतों को जाने बिना असम्भव है। ये संवत् हमारे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय धरोहर हैं।

सहायक ग्रन्थसूची

1. दक्षिण भारत का इतिहास, शास्त्री, डॉ. नीलकण्ठ, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण, 1972-2000

2. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र, यूनाइटेड बुक डिपो, 1997

3. पाण्डुलिपिविज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1978

4. भारत का संविधान: एक परिचय, बसु, दुर्गादास, प्रेंटिस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, तृतीय संस्करण, 1993

[38] भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 295

[39] *वही*

[40] भारतीय पुरालिपि, पृ. 204

©Indira Gandhi National Open University

5. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, ओझा, रायबहादुर, पं. गौरीशंकर हीराचन्द, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 1918

6. भारतीय पुरालिपि, पाण्डेय, राजबली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2012

7. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, सहाय, डॉ. शिवस्वरूप, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2000

कोश ग्रन्थ

हिन्दी

1. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत-हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1966

2. देव, राजा राधाकान्त, शब्दकल्पद्रुम, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, प्रथम पुनर्मुद्रित संस्करण, 1987

3. भट्टाचार्य, श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति, वाचस्पत्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, 1969. द्वितीय से षष्ठ भाग, प्रथम संस्करण, 1970

आंग्ल

Apte, Vaman Shivram, *Sanskrit-English Dictionary*, M.L.B.D., Delhi, Second Editioin, 1976.

©Indira Gandhi National Open University